|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 3: कर्मयोग

2/3 (श्लोक 14-28), रविवार, 15 जून 2025

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/orfclZdl_VM

कर्त्तव्य कर्म का पथ

प्रार्थना,दीप प्रज्जवलन व गुरु वन्दना के साथ तीसरे अध्याय का विवेचन आरम्भ हुआ।

कोई भी जीव बिना कर्म के एक क्षण भी नहीं रह सकता, अर्थात कर्म तो हम कर ही रहे हैं परन्तु कर्म को कर्म योग में कैसे परिवर्तित करें यह हमें इस अध्याय में श्रीभगवान् ने बताया है। हर जीव का जन्म होते ही उसके कर्त्तव्य कर्म निश्चित हो जाते हैं।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।3.10।।

ब्रह्मा जी ने सारे संसार का निर्माण किया, हर जीव का जन्म होते ही उसका कर्म, उसका कर्त्तव्य निश्चित कर ब्रह्मा जी ने आशीर्वाद देते हुए मनुष्य से कहा-कर्त्तव्य के साथ तुम्हारा जन्म हुआ है। इस यज्ञ के द्वारा अपना उत्कर्ष कर लो। यह तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूर्ण करने वाला हो। तुम्हारा कल्याण करने वाला हो। इससे तुम अपनी उन्नति कर लो।

देवान्भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं(म्) भावयन्तः(श्), श्रेयः(फ्) परमवाप्स्यथ॥3.11॥

हमारी सृष्टि में अलग-अलग देवता भी कार्यरत हैं। हम उनको वस्तु के रूप में देखते हैं जैसे नदी, पहाड़, जलवायु यह सभी देवता ही हैं। हमारी संस्कृति ने हमें यही सिखाया है जैसे हम गङ्गा को गङ्गा माँ कहते हैं।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा, दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो, यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥3.12॥

यज्ञ भाव से हम कार्य करेंगे तो देवता भी हमें आशीर्वाद देंगे। यदि हम देवताओं को उनके यज्ञ में सहायता करेंगे तो वे भी हमारे यज्ञ में सहायता करेंगे। हमारे ऊपर भाँति-भाँति के ऋण रहते हैं-

1.देव ऋण
2.पितृ ऋण
3.ऋषि ऋण
4.समाज ऋण

अपने जीवन का यज्ञ, जहाँ से प्राप्त हुआ है, उनके लिए कर्त्तव्य के रूप में, यज्ञ के भाव से कर्म करने के बाद सबको देकर स्वयं के लिए जो बचता है, वह यज्ञ अवशिष्ट है, वह प्रसाद है, वह अमृत है, यह यज्ञ अवशिष्ट ही प्रसाद है। हम सारे पापों से मुक्त हो जाएँगे।

जो केवल स्वयं के लिए जीता है और अपने शरीर के सुख को ही अपना सुख मानता है, अपने कमाए हुए धन से अपने लिए ही सुख भोगने की इच्छा रखता है और किसी के बारे में नहीं सोचता, इनके लिए श्रीभगवान् कहते हैं कि वह पाप का ही भक्षण कर रहा है।

एक पाश्चात्य तत्ववेत्ता शोपिनहर कहते हैं कि यह सब झूठ है अपना जो जीवन है वही एक जीवन है, उसके लिए ही जीना चाहिए। जब तक उपभोग (enjoy) कर सकते हैं तब तक भोग करना चाहिए और जब करने के लिए कुछ ना बचे तब आत्महत्या कर लेनी चाहिए परन्तु जब उन्होंने उपनिषद पढ़े और गीता पढ़ी तो सारी दुनिया को कहने लगे, मैंने जो आज तक बताया था वह सब गलत था।

मनुष्य जब यह समझ लेता है कि मेरा सुख ही मेरा जीवन नहीं है तब वह सृष्टि के कल्याण के लिए जीता है।
श्रीभगवान् आगे के श्लोकों में अर्जुन को समझाते हैं-

3.14

अन्नाद्भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो, यज्ञः(ख्) कर्मसमुद्भवः॥3.14॥

सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न की उत्पत्ति वर्षा से होती है। वर्षा यज्ञ से होती है। यज्ञ कर्मों से सम्पन्न होता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि सर्वप्रथम संसार का चक्र समझना चाहिए। सारे संसार का निर्माण एक ही परमात्मा से हुआ है और सब एक दूसरे पर निर्भर हैं। अन्न से ही सारे भूत मात्र जीवित रहते हैं, चलते हैं और उनका पालन पोषण होता है। उसी से सृष्टि का निर्माण होता है, प्राणीमात्र भी उससे ही निर्मित होते हैं। सभी में अन्नमयकोश है, इस धरती पर मनुष्य और कोई भी जीव उसके बिना नहीं रह सकता। अन्न उत्पन्न करने के लिए वर्षा का होना बहुत आवश्यक है। वर्षा से ही अन्न निर्मित होता है, वर्षा अन्न उत्पन्न करती है, श्रीभगवान कहते हैं कि इसका प्रारम्भ सूर्य देव की उष्णता से होता है जिससे धरती का जल वाष्प बनता है, उस वाष्प से बादल बनते हैं और वर्षा होती है और इसमें वायु देवता, जल देवता, सूर्य देवता सभी अपना योगदान देते हैं। यह सब हो रहा है और कोई तो कर रहा है यह हमें समझ लेना चाहिए।

एक बार एक पुत्र ने अपने पिता से कहा कि सृष्टि का निर्माण नहीं हुआ है और न ही कोई इसको चला रहा है यह सब झूठ है। यह सुनकर उसके पिताजी ने उसको कुछ भी नहीं कहा, केवल मुस्कुरा दिए। उसके पिताजी एक बहुत अच्छे चित्रकार थे। रात को जब वह बेटा सो गया तब उसके पिता ने उसके पास एक बहुत सुन्दर चित्र बनाकर रख दिया। सुबह जब वह बालक सोकर उठा तो उसने वह चित्र देखा तो उसने अपने पिता से पूछा कि यह चित्र कितना सुन्दर है? क्या यह आपने बनाया है? उसके पिता जी जवाब दिया कि यह मैंने नहीं बनाया यह अपने आप बन गया अपने आप तुम्हारे कमरे में आ गया तब वह बालक बोला पिताजी आप कैसी बात कर रहे हैं? यह अपने आप कमरे में कैसे आ सकता है? आपने बनाया है तभी तो यह यहाँ पर आया। तब उसके पिता बोले कि अपने आप कैसे यह चित्र बन सकता है? यह चित्र बनाने की क्या आवश्यकता है? जैसे यह संसार बनाने की क्या आवश्यकता है? बेटे की समझ में आ गया कि यह संसार, जो चल रहा है संसार का, जिसने निर्माण किया है उसके पीछे कोई एक अद्भुत शक्ति है, उसको जानना चाहिए।

यह जो वर्षा होती है इसके पीछे जो देवताओं का कार्य होता है उसको भी समझना चाहिए देवताओं के यज्ञ से ही यह परजन्य होता है तभी यह यज्ञ सम्पन्न होता है क्योंकि सभी ने अपने कर्त्तव्य का पालन और अपना-अपना कर्म किया

यज्ञ का निर्माण कर्म से होता है और किसको क्या कर्म करना चाहिए और कौन सा कर्त्तव्य करना चाहिए यह सब वेदों में बताया गया है। वेदों को अक्षर ब्रह्म कहा गया है वेदों को श्रीभगवान् की साक्षात् वाणी कहा जाता है और यह श्रीभगवान् से ऋषि मुनियों ने ग्रहण की और हमें ऋषि मुनियों से प्राप्त हुई है।

वेदों को अपौरुषेय कहते हैं। वेद अक्षर ब्रह्म से निर्माण हुए, अक्षय अर्थात जिसका कभी क्षय नहीं होता। श्रीभगवान् कहते हैं जब यह सारा चक्र समझ में आ जाएगा तब यह जान जाओगे कि सारे संसार को व्याप्त करने वाला कहाँ पर है? वह परम ब्रह्म यज्ञ में निरन्तर रहता है। जहाँ-जहाँ यज्ञ होता रहेगा और मनुष्य अपने कर्म और कर्त्तव्य का सही पालन करता रहेगा, वहाँ परम ब्रह्म निरन्तर रहता है, उस यज्ञ में परमात्मा ही हैं। ब्रह्मा जी ने सृष्टि का निर्माण किया और यह चक्र चल रहा है, प्रकृति अपना कार्य कर रही है।

इसको सुचारू रूप से चलाने में मदद करनी चाहिए या इसको हानि पहुँचानी चाहिए?
बुद्धिमान मनुष्य तो समझ जाता है कि क्या सही है। आगे श्रीभगवान् कहते हैं-

3.15, 3.16

कर्म ब्रह्मोद्भवं(वँ) विद्धि, ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं(म्) ब्रह्म, नित्यं(यँ) यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥3.15॥
एवं(म्) प्रवर्तितं(ञ्) चक्रं(न्), नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो, मोघं(म्) पार्थ स जीवति॥3.16॥

कर्मों को (तू) वेद से उत्पन्न जान (और) वेद को अक्षरब्रह्म से प्रकट हुआ (जान)। इसलिये (वह) सर्वव्यापी परमात्मा यज्ञ (कर्तव्य कर्म) में नित्य स्थित है।
हे पार्थ! जो मनुष्य इस लोक में इस प्रकार (परम्परा से) प्रचलित सृष्टि-चक्र के अनुसार नहीं चलता, वह इन्द्रियों के द्वारा भोगों में रमण करने वाला अघायु (पापमय जीवन बिताने वाला) मनुष्य (संसार में) व्यर्थ ही जीता है।

विवेचन- जो व्यक्ति इस संसार में रहते हुए जो कार्य करना चाहिए वह कार्य नहीं करता और उसके विपरीत कार्य करता है या कुछ भी नहीं करता है तथा अपने कर्त्तव्य का पालन भी नहीं करता, उस मनुष्य के लिए श्रीभगवान् कहते हैं कि उसका जीवन पापमय है, उसका जीवन अघायु है। सृष्टि के हित के लिए और कल्याण के लिए जो कार्य नहीं करता, वह पापी है। जो व्यक्ति मात्र यही सोचता है कि मेरी इन्द्रियों को सुख मिले और मेरे पेट को भोजन मिले और मुझे सुख की नींद मिले अर्थात खाओ-पियो और मौज करो बाकि और मैं कुछ नहीं जानता, श्रीभगवान् कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति का जीवन व्यर्थ है। उसका कोई उपयोग नहीं है।

मराठी में कहावत है

।।खायला काळ अन् भूयि ला भार।।

वह धरती पर एक भार है।
श्रीभगवान् कहते हैं कि सारे व्यक्ति ऐसे नहीं होते, कुछ ज्ञानी और समझदार भी होते हैं और उनका जीवन कैसा होता है यह अगले श्लोक में बता रहे हैं-

3.17

यस्त्वात्मरतिरेव स्याद्, आत्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टः(स्), तस्य कार्यं(न्) न विद्यते॥3.17॥

परन्तु जो मनुष्य अपने आप में ही रमण करने वाला और अपने आप में ही तृप्त तथा अपने-आप में ही संतुष्ट है, उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है।

विवेचन-श्रीभगवान् कहते हैं कि हर व्यक्ति को इस इस सृष्टि के लिए कोई ना कोई कर्म या कर्त्तव्य करना ही पड़ेगा और जब यह भाव मनुष्य के जीवन में आ जाता है तो उसके लिए वह बन्धन हो जाता है और यह कर्म का बन्धन लगने लगता है अर्थात श्वास हमें लेना ही पड़ेगा, भोजन हमें करना ही पड़ेगा और इस बन्धन से मुक्त होने के लिए हमें श्रीभगवान् को प्राप्त करना ही पड़ेगा। ऐसा कौन है जिसको कोई कर्म करना नहीं पड़ता, कोई कर्त्तव्य करना नहीं पड़ता?

श्रीभगवान् कहते हैं कि जिस व्यक्ति का मन उनमें में लगा हुआ है, जिसका चित्त हमेशा परमात्मा में लगा रहता है और वह कुछ नहीं जानता है, जिधर उसकी दृष्टि जाती है उसको परमात्मा ही दिखाई देते है, जब वह ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है तब ऐसे व्यक्ति को लगता है कि मैं भी परमात्मा का ही हूँ और "**मैं**" जो भी कार्य करता हूँ वह सब परमात्मा के लिए ही करता हूँ। स्वयं के लिए कोई कार्य नहीं रहता। अब फिर यह प्रश्न आ जाता है अगर उसके लिए कोई कार्य नहीं है तो वह क्या कार्य करेगा?

चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं-
एक तो वह है जिसको कुछ ना कुछ कार्य करना ही पड़ेगा अन्यथा उसको भोजन भी नहीं मिलेगा और वह फिर भी कुछ नहीं करता।

दूसरा वह व्यक्ति होता है जिसको कुछ ना कुछ कार्य करना ही पड़ेगा और वह कार्य करता भी है।

तीसरा वह व्यक्ति होता है जिसके पास सब कुछ है उसे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है, परिवार की तरफ से धन, दौलत व ऐश्वर्य उपलब्ध है और वह कुछ कार्य करता भी नहीं है।

चौथे प्रकार का व्यक्ति वह होता है जिसके पास परिवार की तरफ से अर्जित किया हुआ बहुत सारा धन है और उसको कुछ भी कार्य करने की आवश्यकता नहीं है फिर भी वह कुछ ना कुछ कार्य करता है

इन सभी तरह के व्यक्तियों में चौथे प्रकार का व्यक्ति सर्वोत्तम है क्योंकि उसे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है, फिर भी वह लोकहित के लिए कार्य करता है।

श्रीभगवान् हमारे कर्म करने का दृष्टिकोण बदलने की कोशिश कर रहे हैं यदि हम कर्म को बन्धन न मानकर यह सोचकर कर्म करते हैं कि मुझे कर्म करने का अवसर मिला है तब उस व्यक्ति को कर्म बन्धन नहीं लगता।

एक किसान खेती करते समय यह सोचता है कि यह मेरा कर्म है और मुझे यह कर्म करने का अवसर प्राप्त हुआ है और दूसरा किसान यह सोचकर खेती करता है कि मुझे खेती करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में एक किसान के लिए खेती करना बन्धन है और एक किसान के लिए खेती करना बन्धन नहीं है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि हमें कर्म करने का अवसर मिला है, कर्म करते समय हमें ऐसा दृष्टिकोण रखने पर कर्म बन्धन नहीं लगेगा और हमें कर्म करना पड़ रहा है ऐसा सोचने पर कर्म बन्धन लगने लगेगा।

3.18

नैव तस्य कृतेनार्थो, नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु, कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥3.18॥

उस (कर्मयोग से सिद्ध हुए महापुरुष) का इस संसार में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन (रहता है और) न कर्म न करने से ही (कोई प्रयोजन रहता है) तथा सम्पूर्ण प्राणियों में (किसी भी प्राणी के साथ) इसका किंचिन्मात्र भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं रहता।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि किसी व्यक्ति को कर्म करने की आवश्यकता नहीं है फिर भी वह लोक कल्याण के लिए, लोक हित के लिए, समाज के लिए कर्म करता है। जैसे एक व्यक्ति के हाथ-पाँव बाँधकर एक रथ में डाल दिया और रथ जिधर जाएगा उस व्यक्ति को उधर ही जाना पड़ेगा बाद में उसको बन्धन से मुक्त कर दिया उसके हाथ-पाँव खोल दिये जाएँ तो अब वह व्यक्ति चाहे रथ को रोक सकता है, रथ को जहाँ जाना चाहे, वहाँ ले जा सकता है क्योंकि उसको अब मुक्त कर दिया है, अब वह अपने लक्ष्य तक रथ ले जा सकता है।

हमें अभी तक यह पता था कि हम कर्म बन्धन में फँसे हुए हैं, अब हम मुक्त हैं क्योंकि हमें कुछ नहीं चाहिए।
अब हमें रथ से मुक्त कर दिया है क्योंकि रथ ही हमारा शरीर है हम अपने रथ को अपने लक्ष्य तक लेकर जा सकते हैं। जिसको संसार में कुछ करने की आवश्यकता नहीं है उसे कुछ न करने की भी स्वतन्त्रता दी है, उसको बाकि किसी से कुछ लेना-देना नहीं है, उसे कुछ मिलने वाला नहीं है, इससे उसका कुछ भी स्वार्थ सिद्ध होने वाला नहीं है। अन्य लोगों के लिए कार्य करने से, अन्य प्राणी मात्र की सहायता करने से उसका कुछ लाभ होने वाला नहीं है, वह इस कर्म बन्धन से मुक्त हो गया है और वह अपने जीवन को अपने गन्तव्य तक अर्थात् परमात्मा तक ले जा सकता है। ऐसे मनुष्य के लिए श्रीभगवान् आगे कहते हैं -

3.19

तस्मादसक्तः(स्) सततं(ङ्), कार्यं(ङ्) कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म, परमाप्नोति पूरुषः॥3.19॥

इसलिये (तू) निरन्तर आसक्ति रहित (होकर) कर्तव्य कर्म का भली भाँति आचरण कर; क्योंकि आसक्ति रहित (होकर) कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- कृ धातु से कार्य और कर्म बना है पर दोनों में अन्तर है, जो करने के लिए योग्य है वह कार्य है। कर्म में खाना, पीना, सोना सब आता है क्योंकि यह सब कर्म है लेकिन जो **कर्म करने के योग्य है वह कार्य है।**
जैसे पीने के लिए जो योग्य है वह पेय है, गाने के लिए जो योग्य है वह गेय है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि तुम्हें कुछ भी नहीं चाहिए तो ऐसा नहीं है कि आप कुछ भी कर्म कर सकते हैं। कुछ नहीं चाहिए फिर भी कर्म करने योग्य हो ऐसा कार्य करना चाहिए। अच्छे कार्य निरन्तर अनासक्त होकर करना चाहिए। तुम्हें कुछ नहीं चाहिए फिर भी कार्य अच्छे करने चाहिए।

श्रीभगवान् कहते हैं कि अनासक्त होकर कर्म करो, जैसे अपना व्यापार चलाना है, किसी को नौकरी करनी है परन्तु कोई एक ऐसा कार्य अवश्य करना चाहिए जिसके लिए कोई अपेक्षा ना हो, जिसके लिए कोई स्वार्थ ना हो, वह लोक हित के लिए हो और वह निरन्तर करते रहना चाहिए। उस कार्य के लिए मुझे कोई अच्छा कहे यह भी आसक्ति नहीं होनी चाहिए बस निरन्तर उस कार्य को, कर्त्तव्य को सृष्टि के हित के लिए, समाज कल्याण के लिए करते रहना चाहिए।

श्रीभगवान् कहते हैं मनुष्य को ऐसे कार्य करने से 'मैं' प्राप्त हो जाऊँगा अर्थात् जीव को परमात्मा की प्राप्ति हो जायेगी।
एक आनन्द की प्राप्ति हो जाएगी क्योंकि हम श्रीभगवान को **सच्चिदाननन्द** कहते हैं अर्थात सच्चा आनन्द और आनन्द की प्राप्ति होना ही श्रीभगवान की प्राप्ति होना है। समाधि अवस्था में जो आनन्द प्राप्त होता है उसे समाधान कहते हैं और समाधि अवस्था को ही परमात्मा कहते हैं।

अष्टाङ्ग योग के आठ सोपान बताए गए हैं -
१) यम
२) नियम
३) आसन
४) प्राणायाम
५) प्रत्याहार
६) धारणा
७) ध्यान
८) समाधि

ध्यान के बाद जब एकरूप हो जाता है योगी, तब हो जाती है समाधि।
अर्थात परमात्मा के साथ एकरूपता।
परमात्मा के साथ हम मनुष्य एकरूपता का अनुभव कर सकते हैं जब हम एक अच्छा कार्य समाज के लिए, लोक कल्याण के लिए निरन्तर करते रहेंगे।
श्रीभगवान् कहते हैं यह अनुभव बहुत सारे व्यक्तियों ने कर लिया है।
अब आगे अर्जुन से कहते हैं-

3.20

कर्मणैव हि संसिद्धिम्, आस्थिता जनकादयः।
लोकसङ्ग्रहमेवापि, सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि॥3.20॥

राजा जनक जैसे अनेक महापुरुष भी कर्म (कर्मयोग) के द्वारा ही परमसिद्धि को प्राप्त हुए थे। (इसलिये) लोक संग्रह को देखते हुए भी (तू) (निष्काम भाव से) कर्म करने ही के योग्य है अर्थात् अवश्य करना चाहिये।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि राजा जनक ने अच्छे कर्म करके ही परम सिद्धि की प्राप्ति कर ली थी।
अर्जुन श्रीभगवान् से कहते हैं कि उन्हें युद्ध नहीं करना है, वह भिक्षा माँग कर निर्वाह कर लेंगे, वह वन में जाकर रह लेंगे। श्रीभगवान् कहते हैं कि इसका अर्थ तो यही है कि तुम्हें स्वयं के लिए कुछ नहीं चाहिये इसलिए तुम लोक कल्याण के लिए युद्ध करो।

लोक सङ्ग्रह का अर्थ है लोक सञ्चय। जब लोग कल्याण के लिए मनुष्य कार्य करता है तो लोक सञ्चय स्वयं हो जाता है। तुम एक योद्धा हो और योद्धा का कर्त्तव्य होता है कि वह युद्ध करे इसलिए तुम्हें समाज के लिए, लोकहित के लिए युद्ध करना ही पड़ेगा।

दोनों सेनाएँ आमने-सामने खड़ी हैं। अर्जुन! तुम युद्ध करो, चाहे ना करो, युद्ध होना तो निश्चित है यह टल नहीं सकता।
जब कोई व्यक्ति सेवा निवृत्त हो जाता है तो वह सोचता है कि अब मैं निवृत्त हो गया अब मुझे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। अपने लिए नहीं करना है पर समाज के लिए, लोगों के लिए कार्य करना चाहिए। आजकल यह प्रचलन हो गया है कि निवृत्ति के बाद सिर्फ अपने मनोरञ्जन के लिए ही काम करना चाहिए पर ऐसा करने से आनन्द की प्राप्ति नहीं होगी। तात्कालिक सुख अवश्य मिलेगा लेकिन वह सुख कुछ ही क्षण के लिए मिलेगा। सुख मिलना शुरू होता है और जल्दी ही समाप्त हो जाता है। आनन्द का आरम्भ और अन्त नहीं है यह सर्वानन्द है यह हमेशा रहता है।
श्रीभगवान् कहते हैं " हेअर्जुन! तुम एक श्रेष्ठ व्यक्ति हो और श्रेष्ठ व्यक्ति को एक समाज के लिए आदर्श बनना चाहिए।

3.21

यद्यदाचरति श्रेष्ठ:(स्), तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं(ङ्) कुरुते, लोकस्तदनुवर्तते॥3.21॥

श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो आचरण करता है, दूसरे मनुष्य वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, दूसरे मनुष्य उसी के अनुसार आचरण करते हैं।

विवेचन- श्रेष्ठ व्यक्ति को समाज के सम्मुख उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए क्योंकि वे जैसा आचरण करेंगे लोग उसी का अनुसरण करते हैं। एक नेता को जनहित के लिए ही काम करना चाहिए तभी वह जनता के लिए आदर्श बन सकता है।

घर के बड़े जो करते हैं वही बच्चे भी करते हैं। उन्हें संस्कार देने की आवश्यकता नहीं होती, वे अपने बड़ों से ही सब सीखते हैं। यदि बड़ों का आचरण अच्छा होगा तो अपने आप ही बच्चों पर अच्छे संस्कार होंगे।
जब बच्चा अपनी माँ को सारा समय मोबाइल के साथ देखता है तो वह भी मोबाइल लेकर खेलेगा, माँ यदि इस बात से उसे रोकना चाहे तो भी वह नहीं मानता क्योंकि उसके लिए तो माँ ही आदर्श है।

जब पिता घर पर होते हुए भी बच्चे से फोन पर झूठ बोलने के लिए कहते हैं कि वे घर पर नहीं हैं तो बच्चा झूठ बोलना सीखने लगता है। इसीलिए आवश्यकता नहीं होने पर भी बड़ों को नियमों का पालन करना ही चाहिए।

श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि वे चाहें या न चाहें उन्हें भी समाज कल्याण के लिए युद्ध करना ही चाहिए और एक आदर्श स्थापित करना चाहिए।

श्रीभगवान् ने पाँच हजार वर्ष पूर्व अर्जुन को भगवद्गीता के माध्यम से ज्ञान दिया था। आज भी हम उससे ज्ञान प्राप्त करते हैं और हमें प्रेरणा भी मिलती है, इसलिए नहीं कि श्रीभगवान् ने कही थी, बल्कि इसलिए कि श्रीभगवान् ने गीता जी में जो भी कहा है उसे स्वयं कर आदर्श स्थापित किया है।

3.22

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं(न्), त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं(वँ), वर्त एव च कर्मणि॥3.22॥

हे पार्थ! मुझे तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न (कोई) प्राप्त करने योग्य (वस्तु) अप्राप्त है, (फिर भी मैं) कर्तव्य कर्म में ही लगा रहता हूँ।

विवेचन - श्रीभगवान् त्रिलोक के स्वामी हैं, त्रिलोक के स्वामी ने ही अवतार लिया है, वे द्वारकाधीश हैं। उन्हें कुछ नहीं चाहिए उनके पास सब कुछ है किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। तीनों लोकों में उनके लिए कोई कर्त्तव्य नहीं बचा है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! मुझे यहाँ पर कुछ भी कर्त्तव्य करने की आवश्यकता नहीं है। जो मुझे प्राप्त करना चाहिए और मुझे प्राप्त नहीं हुआ है ऐसी मेरी कोई इच्छा नहीं है फिर भी 'मैं' कर्म कर रहा हूँ।
श्रीभगवान् के सामने जो भी कर्त्तव्य आया भगवान ने हर कर्त्तव्य को श्रेष्ठता के साथ किया। कर्म योग का सबसे अच्छा उदाहरण श्रीभगवान् का ही है।

भगवान श्रीकृष्ण ने बचपन में गौ-पालन किया है। यज्ञ में जूठी पत्तलें उठाईं, आवश्यकता पड़ने पर युद्ध भी किया और आवश्यकता पड़ने पर अर्जुन के रथ का सारथी बनकर कर्त्तव्य का पालन भी किया। भगवान् श्रीकृष्ण को यहाँ अर्जुन का रथ चलाने की क्या आवश्यकता है, परन्तु रथ चालक का, सारथी का भी कार्य वे कर रहे हैं। केवल सारथी का कार्य नहीं करते, महाभारत में वर्णन आता है कि युद्ध में जब बाण चलते हैं तो जैसे मनुष्य को बाण लगता है वैसे ही घोड़ों को भी बाण लगते हैं तो उन सारे घोड़ों को जो घाव हुए हैं, जो बाण लगे हैं, उन सारे घावों पर उनको औषधि लगाना, उनको धोना, उनको साफ करना,

उन घोड़ों को नहलाना यह सारा कार्य भगवान् श्रीकृष्ण करते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि श्रेष्ठ लोग जो भी आचरण करते हैं दूसरे सब उनको देखकर, वैसा ही करते हैं। उनका ऐसा करना अपने कार्य को सम्पूर्ण रूप से श्रेष्ठतम करना था क्योंकि ऐसा कार्य जो श्रेष्ठ लोग करते हैं वह अपने आप में एक उदाहरण बन जाता है, जिसको देखकर सब अनुसरण करते हैं।

गुरुदेव संन्यासी हैं, उनको किसी भी चीज की अपेक्षा नहीं है फिर भी सतत्, निरन्तर कार्य करते रहते हैं। पूरे दिन में मात्र चार घण्टे ही सोते हैं। क्षण भर का भी विश्राम नहीं लेते। इतना व्यस्त होने पर भी अपनी सन्ध्या वन्दन प्रतिदिन करते हैं जबकि संन्यासी जब संन्यास लेते हैं तब सन्ध्या वन्दन का बन्धन नहीं होता। साधारण लोगों को एक श्रेष्ठ आचरण बताने के लिए प्रतिदिन नियम से दोनों काल में वन्दन करते हैं।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं -

हें ऐसे असे स्वभावे। म्हणौनि कर्म न संडावें।
विशेषें आचरावें लागे सन्ती।।

सन्तों को अपने लिए कुछ नहीं चाहिए फिर भी साधारण लोगों के लिए विशेष रूप से, और ध्यान से कर्त्तव्य करना पड़ता है ताकि एक अच्छा और श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत कर सकें ।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं -

अंधा पुढे मार्गात,जस डोळस जातो चालत।
अज्ञाना प्रगटावा धर्मु जैसा।।

नेत्रहीन को मार्ग बताने के लिए जैसे नेत्र वाला मार्ग बताता है। इसी तरह एक समझदार व्यक्ति को भी नासमझ व्यक्तियों के लिए अच्छे कर्म करते रहना चाहिए।
श्रीभगवान् कहते हैं अगर मैं अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करूँगा, तब क्या होगा? यह आगे के श्लोक में बताते हैं-

3.23

यदि ह्यहं(न्) न वर्तेयं(ञ्), जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते, मनुष्याः(फ्) पार्थ सर्वशः॥3.23॥

क्योंकि हे पार्थ ! अगर मैं किसी समय सावधान होकर कर्तव्य-कर्म न करूँ (तो बड़ी हानि हो जाय; क्योंकि) मनुष्य सब प्रकार से मेरे (ही) मार्ग का अनुसरण करते हैं।

विवेचन- यदि श्रीभगवान् अपने कर्त्तव्य नहीं करेंगे तो क्या होगा?
श्रीभगवान् को कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, फिर भी वे ध्यान केन्द्रित कर, मन लगाकर अपना काम करते हैं क्योंकि सामान्य मनुष्य उन्हीं का अनुसरण करते हैं।

श्रेष्ठ व्यक्ति दूसरों के लिए आदर्श होते हैं, वे जैसा करते हैं सब वैसा ही करते हैं। इस बात को एक दृष्टान्त के साथ समझ सकते हैं।

एक बार एक माता अपने पुत्र के साथ एक सन्त के पास गई और उनसे कहा कि उसके बेटे को गुड़ खाने की आदत हो गई है और वह इसके लिए चोरी भी कता है। आप इसे समझाइये।

सन्त माता को अपने पुत्र के साथ पन्द्रह दिनों बाद पुन: आने के लिए कहते हैं और जब माता लौट कर आती है तो सन्त उस

बालक के सिर पर हाथ फिराते हुए कहते हैं कि अधिक गुड़ स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं होता इसलिए वह गुड़ ना खाए।

पन्द्रह दिनों बाद माँ आकर सन्त से कहती हैं कि उनके बेटे ने गुड़ खाना छोड़ दिया है, परन्तु उन्होंने पहले ही दिन बालक को क्यों नहीं समझाया? इस पर सन्त कहते हैं कि उन्हें स्वयं गुड़ खाने की आदत थी इसलिए उन्होंने पन्द्रह दिनों का समय लिया ताकि बालक को समझाने से पहले वे उस आदत को छोड़ सकें।

श्रीभगवान् ने सभी प्रकार के कर्म करते हुए यह दिखा दिया कि कोई भी कर्म छोटा या बड़ा नहीं होता और इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता आज भी इतनी प्रभावशाली है।
यदि श्रीभगवान् ने अपना कर्त्तव्य नहीं किया तो यह संसार नष्ट हो जायेगा।

3.24

उत्सीदेयुरिमे लोका, न कुर्यां(ङ्) कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्ता स्याम्, उपहन्यामिमाः(फ्) प्रजाः॥3.24॥

यदि मैं कर्म न करूँ, (तो) ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायँ और (मैं) वर्णसंकरता को करने वाला होऊँ (तथा) इस समस्त प्रजा को नष्ट करने वाला बनूँ।

विवेचन- हम इस पृथ्वी पर रहते हैं और गुरुत्वाकर्षण के कारण हम गिरते नहीं है जबकि पृथ्वी गोल है। पृथ्वी ने हमें धारण किया हुआ है।
वैज्ञानिकों ने बताया कि सूर्य देव की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण पृथ्वी अपनी कक्षा में घूमती रहती है।
पृथ्वी को किसने धारण कर रखा है? पृथ्वी क्यों घूमती है यह किसी को नहीं पता। पृथ्वी आकाश में लटक रही है।
सूर्य देव को किसने धारण कर रखा है? आकाशगङ्गा ने सूर्य देव को धारण कर रखा है। लाखों प्रकाशीय तारे आकाश में हैं, इन तारों को किसने धारण कर रखा है? ऐसी कौन सी शक्ति है? किसने इनका निर्माण किया है और इनका कहाँ विलय होने वाला है?
यह सब परमात्मा ने धारण कर रखा है। परमात्मा ही शक्ति है जिसके कारण सब कार्य सुचारू रूप से चल रहा है।

सूर्य भगवान् रोज उदित और अस्त होते हैं और उनके प्रकाश से ही हमारा सारा कार्य चलता है। अगर वह महान नहीं हों तो हमारा कोई अस्तित्त्व ही नहीं रहेगा। सूर्य भगवान से अगर कहें कि आप इतना बड़ा कार्य कर रहे हैं तो वे कहेंगे कि मैं कुछ नहीं कर रहा, 'मैं' तो अपनी एक जगह पर स्थित हूँ, पृथ्वी के चक्कर लगाने से ही मैं उदित और अस्त होता दिखाई देता हूँ। उनके एक जगह स्थित होने से ही और उनके प्रकाश से ही सारे कार्य हो रहे हैं। हम मन में समझते हैं कि हम कर रहे हैं अगर एक क्षण भर के लिए सूरज भगवान अपना प्रकाश रोक दें क्या होगा इसलिए श्री भगवान् कहते हैं कि कार्य ऐसे करने चाहिए जिससे सबका कल्याण हो।

3.25

सक्ताः(ख्) कर्मण्यविद्वांसो, यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्त:(श्), चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम्॥3.25॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! कर्म में आसक्त हुए अज्ञानी जन जिस प्रकार (कर्म) करते हैं, आसक्ति रहित तत्त्वज्ञ महापुरुष (भी) लोक संग्रह करना चाहता हुआ उसी प्रकार (कर्म) करे।

विवेचन- अज्ञानी लोग, जिन्होंने गीता नहीं पढ़ी है, अपना कार्य करते हैं, आचरण करते हैं और अपना कर्त्तव्य करते हैं परन्तु आसक्त होकर करते हैं ताकि मन की इच्छा का फल मिल सके। सामान्य लोग कुछ करने से पहले यह पूछते हैं कि मुझे यह कार्य करने से क्या मिलेगा? कुछ मिलेगा तभी कार्य करते हैं, कुछ नहीं मिलेगा तो नहीं करेंगे। वे सब आसक्त होकर बहुत कार्य करते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि विद्वान लोगों को भी वैसे ही ध्यान देकर काम करना चाहिए लेकिन आसक्त होकर नहीं, मुझे कुछ मिल रहा है इसलिए 'मैं' यह कर रहा हूँ ऐसा नहीं होना चाहिए कर्त्तव्य के भाव से कार्य करते रहना चाहिए। आवश्यकता ना होने पर भी कर्म करना चाहिए।

लोक सङ्ग्रह अर्थात लोगों के कल्याण के लिए, लोगों के हित के लिए, लोगों का सङ्ग्रह करने के लिए कर्म करना चाहिए। मनुष्य को यह पता चल जाता है कि मुझ में और अन्य में कोई अन्तर नहीं है, जब मनुष्य को यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है और उसका भेद समाप्त हो जाता है तब उसको सर्वत्र परमात्मा ही दिखाई देते हैं।
जो सन्त अच्छे व्यक्ति होते हैं उनको भेद दृष्टि नहीं होती है। दूसरे के दुःख को देखकर दुःखी हो जाते हैं और दूसरे के सुख को देखकर सुखी हो जाते हैं। किसी को दूसरा मानते ही नहीं हैं ,यह मेरा ही है और यही सोचकर वे अपना कर्त्तव्य सबके लिए एक समान करते रहते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि किसी को भी यह जाकर नहीं बताना चाहिए कि तुम आसक्त होकर कार्य नहीं करो और असक्त होकर कार्य करो। जो जैसा कार्य कर रहा है उसको वैसे ही कार्य करने देते रहना चाहिए।

3.26

न बुद्धिभेदं(ञ्) जनयेद्, अज्ञानां(ङ्) कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि, विद्वान्युक्तः(स्) समाचरन्॥3.26॥

सावधान तत्त्वज्ञ महापुरुष कर्मों में आसक्ति वाले अज्ञानी मनुष्यों की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न न करे, (प्रत्युत स्वयं) समस्त कर्मों को अच्छी तरह से करता हुआ (उनसे भी वैसे ही) करवाये।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि गीता लोगों को सुधारने के लिए नहीं है, स्वयं को सुधारने के लिए है। किसी को जाकर यह नहीं बताना चाहिए कि तुम्हें यह करना चाहिए या नहीं करना चाहिए बल्कि स्वयं अच्छी बातों का अनुकरण करना चाहिए। किसी को भी यह बता कर कि भगवद्गीता पढ़ने से यह ज्ञान मिलता है, भगवद्गीता पढ़ने से अच्छे संस्कार मिलते हैं, गीता पढ़ने के लिए नहीं कहना चाहिए। गीता का प्रचार करना चाहिए पर किसी को जबरदस्ती पढ़ने के लिए नहीं कहना चाहिए।

जो कर्म में आसक्त होकर कर्म करते हैं उनके अन्दर बुद्धि भेद निर्माण नहीं करना चाहिए, जो जैसे कर्म कर रहे हैं उनको वैसे ही कर्म करने देना चाहिए। अच्छे कार्य करके उनसे भी अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। अगर हम स्वयं अच्छे कार्य करेंगें तभी हम उन्हें भी अच्छे कार्य करने के लिए कह सकते हैं। ज्ञानी व्यक्ति का यही अच्छा लक्षण है कि वह अज्ञानी व्यक्ति को अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित करें तभी वह अच्छे कार्य कर पायेंगे जैसे गीता पढ़ने के लिए प्रवृत्त हो पायेंगे।

3.27

प्रकृतेः(ख्) क्रियमाणानि, गुणैः(ख्) कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा, कर्ताहमिति मन्यते॥3.27॥

सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं; (परन्तु) अहंकार से मोहित अन्तःकरण वाला अज्ञानी मनुष्य 'मैं कर्ता हूँ' -- ऐसा मान लेता है।

विवेचन- प्रकृति तीन गुणों से बनी है, सत्त्व, रज और तम। सारे कार्य इन्हीं तीन गुणों के आधार पर होते हैं। हमारा शरीर प्रकृति से बना हुआ है और प्रकृति तीनों गुणों से ही बनी हुई है। कार्य शरीर द्वारा होता है पर हम शरीर नहीं हैं। मेरा हाथ, मेरा पैर, मेरा सिर जब 'मैं' यह कहता हूँ, मेरा शरीर यह कहने वाला '**मैं** ' कौन हूँ।

शरीर द्वारा किए जाने वाले सारे कार्य आत्मा की उपस्थिति में किए जाते है पर इन सब का कर्त्ता कौन है?
मैं बोल रहा हूँ, मैं चल रहा हूँ, मैं खा रहा हूँ, यह सब सामान्य लोगों के लिए झूठ नहीं है लेकिन यहाँ 'मैं' कच्चा है और 'मैं' शरीर

के साथ मिलकर यह सब कार्य कर रहा है और जो पक्का 'मैं' है उसे हमें जानना चाहिए और जो मनुष्य यह जानता है कि यह शरीर में रहकर कार्य हो तो रहा है लेकिन 'मैं' कर्त्ता नहीं हूँ। श्रीभगवान् कहते है यह शरीर के साथ जो अहङ्कार का भाव है, मैं का भाव है उसके कारण अज्ञानी मनुष्य विमूढ़ हो गया है। जीवात्मा 'मैं' कर्त्ता हूँ ऐसा मान लेता है।

3.28

तत्त्ववित्तु महाबाहो, गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त, इति मत्वा न सज्जते॥3.28॥

परन्तु हे महाबाहो! गुण-विभाग और कर्म-विभाग को तत्त्व से जानने वाला महापुरुष 'सम्पूर्ण गुण (ही) गुणों में बरत रहे हैं' -- ऐसा मानकर (उनमें) आसक्त नहीं होता।

विवेचन- तत्त्व में तत् अर्थात आत्मा या परमात्मा और उसका तत्त्व यानि उसका भाव।
जैसे बालक का बालकत्त्व। बालकत्त्व का भाव है उसका बचपन, माता का भाव है-मातृत्त्व।
वैसे ही तत् का का भाव है तत्त्व।

मातृत्त्व एक माँ ही जान सकती है। आत्मतत्त्व का भाव आत्मा के साथ एक रूप हुए बिना नहीं जान सकते। तत्त्ववित्त अर्थात तत्त्व जानने वाला, उस आत्मतत्त्व के भाव को परिपूर्ण रूप से जानने वाले को तत्त्ववेत्ता कहते हैं। एक ज्ञानी गुण विभाग को और कर्म विभाग को अच्छी तरह से जानता है।

सत्त्व, रज और तम तीनों गुण आपस में मिलकर प्रकृति का कार्य करते हैं। ज्ञानी व्यक्ति यह मानता है कि यह सब कार्य प्रकृति के द्वारा हो रहे हैं, मैं इसका कर्त्ता नहीं हूँ।

सन्त कबीर कहते हैं -

जो कुछ किया तुम किया,
मैं कुछ किया नाहि।
कहो कही ये मैं किया,
तुम ही हो मुझे माहि।।

यह सब जो हो रहा है यह आपका कार्य है, मैं नहीं कर रहा हूँ। यदि आप कहेंगे कि मैंने ही किया है, तो मेरे भीतर भी तो आप ही बैठे हैं, आप ही सब कार्य कर रहे हैं। परमात्मा के होने के कारण ही प्रकृति का कार्य चल रहा है यदि यह कार्य प्रकृति के द्वारा चल रहा है तो हमें क्या करना चाहिए? हम तो यह जानते हैं कि यह कार्य मैं कर रहा हूँ। श्रीभगवान् कहते हैं जो यह समझता है उसको समझने दो, उसकी बुद्धि भेद मत करो परन्तु यह पता करना चाहिए कि यह कार्य कौन कर रहा है और किसके द्वारा यह कार्य हो रहा है?
यह यदि जानना है तो क्या करना चाहिए? और कर्म को कर्म योग में कैसे बदलना चाहिए? इन प्रश्नों का उत्तर श्रीभगवान् आगे के श्लोकों में बताएँगे।
आज के सत्र का विराम साधकों की जिज्ञासा के समाधान और श्रीभगवान् की प्रार्थना के साथ हुआ।

प्रश्नोत्तर
प्रश्नकर्ता - श्रीमती क्षमा अग्रवाल दीदी
प्रश्न - श्रीमद्भगवद्गीता की सहायता से दूसरों की गलती कैसे सुधार सकते हैं?
उत्तर - श्रीमद्भगवद्गीता की सहायता से स्वयं का उद्धार किया जा सकता है, दूसरों का जीवन हमारे हाथों में नहीं है, हम उन्हें नहीं सुधार सकते। यह काम सन्तों का है। सामान्य मनुष्य अपने आचरण से किसी को प्रेरित कर सकते हैं।
यदि कोई अपनी गलती मान लेता है तो यह सुधार की ओर उसका पहला कदम होगा।

भगवद्गीता में पहले अर्जुन ने श्रीकृष्ण के सामने युद्ध न करने का अपना तर्क रखा, परन्तु जब उन्हें लगा कि श्रीभगवान् कुछ नहीं कह रहे हैं तो उन्हें अपनी गलती का आभास होता है और वे श्रीभगवान् की शरण जाते हैं और दूसरे अध्याय से श्रीकृष्ण उन्हें उपदेश देना प्रारम्भ करते हैं।
श्रीमद्भगवद्गीता श्रीभगवान् का वाङ्मय स्वरूप है जिसकी शरण में जाने से मार्गदर्शन होता है।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती सुषमा गुप्ता दीदी
प्रश्न - अहमदाबाद में हुई विमान दुर्घटना ने मन में हलचल मचा दी है। श्रीभगवान् को तो सब पता होता है तो क्या यह उन्हीं का आदेश था या उन यात्रियों की आयु ही उतनी थी?
उत्तर - निश्चित ही यह एक भयावह घटना है जिसे भुला पाना कठिन है। यह प्रकृति का खेल है जो हमारी समझ के बाहर है। जीवन मृत्यु का चक्र समझने से पहले स्वयं को पहचानना आवश्यक है कि हम शरीर नहीं हैं। बचपन, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था, इन सब में शरीर बदलता है " मैं" नहीं, तो फिर यह "मैं" कौन है? यह जीवात्मा है जो परिवर्तित नहीं होता। आत्मा का प्रवास चलता रहता है।

मृत्यु कब आएगी कोई नहीं जान सकता है। गरुड़ पुराण के एक प्रसङ्ग द्वारा इसे समझने का प्रयास करते हैं।
एक बार देवताओं की सभा होती है जिसमें सभी देवता आते हैं। यमराज भी आते हैं, आते समय उनकी दृष्टि पेड़ पर बैठे पक्षियों के जोड़े पर पड़ती है। यह देख वे पक्षी घबरा कर गरुड़ के पास जाते हैं और उनसे प्राण रक्षा की प्रार्थना करते हैं। गरुड़ उन्हें दूर एक पहाड़ पर छोड़ आते हैं। सभा समाप्त होने पर जब यमराज बाहर आते हैं तो उन्हें वे पक्षी नहीं दिखते। वे गरुड़ जी से इस बारे में पूछते हैं तो गरुड़ बता देते हैं कि वे पक्षियों को दूर एक पहाड़ पर छोड़ आए हैं। तब यमराज कहते हैं कि आपने अपना काम अच्छे से कर दिया है क्योंकि उन पक्षियों की मृत्यु उसी पहाड़ पर ही निश्चित है।
भगवद्गीता में सभी प्रश्नों के उत्तर मिल सकते हैं।
How to live and leave happily यह हम भगवद्गीता से सीख सकते हैं।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती बसन्ती साहु दीदी
प्रश्न - कर्म क्या है और कार्य क्या है?
उत्तर - हम जो भी अच्छा या बुरा करते हैं वह हमारा कर्म है और जो कर्म करने योग्य हैं कार्य कहलाते हैं, जैसे कि पीने योग्य पानी पेय कहलाता है।

प्रश्नकर्ता - डाक्टर राकेश कालरा दीदी
प्रश्न - भगवद्गीता में दो प्रकार के सखाभाव बताए गये हैं। पहला गुरु द्रोणाचार्य और राजा द्रुपद, दोनों एक ही गुरुकुल में विद्या प्राप्त करते हैं और मित्र बनते हैं, परन्तु जब द्रोणाचार्य द्रुपद से सहायता माँगने जाते हैं तो अपने अहङ्कारवश द्रुपद उनका अपमान करते हैं और बाद में द्रोणाचार्य द्रुपद से बदला लेते हैं।
वहीं दूसरी ओर श्रीकृष्ण और सुदामा की मित्रता है जहाँ सुदामा के बिना कुछ कहे ही श्रीकृष्ण उन्हें सब कुछ देते हैं हमें कौन सा सखाभाव अपनाना चाहिए?
उत्तर- श्रीमद्भगवद्गीता में संसार के हर प्रकार के व्यक्तित्त्वों का वर्णन किया गया है। भगवद्गीता हमारा विवेक जागृत करती है जो हमें सही मार्ग अपनाने में सहायता करता है।
गुरु द्रोणाचार्य ने द्रुपद से बदला लेने के लिए कौरवों की नौकरी की और युद्ध में गलत पक्ष का साथ दिया। यह ज्ञान बेचने वाली बात है। महाभारत में अर्जुन भी हैं और दुर्योधन भी, हमें अर्जुन की तरह बनना है, अच्छी बातें ग्रहण करने का प्रयास करना चाहिए।

अपना दृष्टिकोण बदलना आवश्यक है। युधिष्ठिर के समान सभी में गुण देखना चाहिए न कि दुर्योधन की तरह अवगुण। दैवीय सम्पदाएँ अपनाकर आसुरी गुणों से दूर रहना सीखना चाहिए।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती मन्दाकिनी दीदी
प्रश्न - भगवद्गीता पढ़कर भी कुछ बच्चे बड़ों की बात नहीं सुनते, उनका सम्मान नहीं करते, उनका मार्गदर्शन करें।
उत्तर - भगवद्गीता में जैसा कहा गया है उसको अपने आचरण में लाना चाहिए। बड़ों का आदर, सम्मान करना चाहिए। प्रणाम

करने से अहङ्कार मिटता है।
युद्ध के समय जब श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को पितामह भीष्म के पास आशीर्वाद लेने जाते हैं और युधिष्ठिर भीष्म को प्रणाम करते हैं तो शत्रु पक्ष में होते हुए भी भीष्म उन्हें "विजयी भव" का आशीर्वाद देते हैं। इसका कारण युधिष्ठिर का सम्माननीय आचरण था।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती राजेश शर्मा दीदी
प्रश्न - यदि अपने को कर्त्ता नहीं मानेंगे तो कर्त्तव्य कैसे करेंगे? कर्त्तृत्व का भाव न होने पर उत्साह नहीं रहता। क्या पूरी तरह निष्काम हो सकते हैं?
उत्तर- अच्छा काम करना चाहिए यह व्यवहार है।
अकर्त्ता का भाव होना यह तत्त्व ज्ञान है जो बहुत ही ऊँचे स्तर पर है। जब हम उस स्तर पर पहुँचते हैं तो सभी में एक ही तत्त्व दिखता है। परन्तु हमारा व्यवहार भिन्न-भिन्न होना चाहिए। कार्य तो शरीर द्वारा ही होंगे, अच्छे काम करने के बाद यह भूल जाना है कि यह हमने किया है।
गृहस्थाश्रम में कामनाएँ तो रहेंगी ही, पूरी तरह निष्काम नहीं हो सकते। धर्मानुसार की गईं कामनाएँ श्रीभगवान् का ही स्वरूप हैं। हमें पूरे दिन में एक काम तो ऐसा करना चाहिए जिसमें हमारा कोई स्वार्थ न हो।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती प्रीति शुक्ला दीदी
प्रश्न - हमारे गुण और कर्म प्रकृति के अनुसार होते हैं। आयु के साथ साथ हमारे गुण बदलते हैं, बचपन में राजसी गुणों की अधिकता होती है परन्तु प्रौढ़ावस्था में सात्त्विक गुण बढ़ते हैं। क्या हमारी प्रकृति भी बदलती है?
उत्तर- गुण हमेशा बदलते रहते हैं, तीनों गुण एक दूसरे पर हावी होते रहते हैं। हम गुणों के बन्धन में बन्धे होते हैं, साक्षी भाव से स्वयं की ओर देखकर सीखना है और गुणों पर नियन्त्रण लाना है ताकि हम अच्छे कर्म कर सकें।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं

पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||